मानसश्री गोपाल राजू
रूड़की - २४७ ६६७
www.bestastrologer4u.blogspot.in

जीवात्मा का मूल लक्ष्य है परमात्मा की प्राप्ति

एक अंश है और दूसरा अंशी। इनका परस्पर मिलना ही पूर्णता है और इसको अध्यात्म की भाषा में कहें तो मोक्ष है। परमात्मा की प्राप्ति के अनेकों मार्ग ऋषि, मुनी और अध्यात्म ममज्ञों ने बताए हैं। अपने-अपने बुद्धि और विवेक से अध्यात्म पथ पर अग्रसर जीव उनको अपना रहे हैं। परन्तु सब साधनों में कर्म, ज्ञान और भक्ति यह तीन शास्त्रकारों ने

सर्वोत्तम कहे हैं।

कर्म से तात्पर्य है विद्या अर्जित करना, नौकरी करना, व्यापार करना, अपने और अपने परिजनों के लिए संसाधन जुटाना, माता-पिता की सेवा करना, दान, पुण्य आदि। "जैसा कर्म करेगा, वैसा फल देगा इंसान" यह है गीता का ज्ञान। भेदाभेद की दृष्टि से यह समस्त कर्म श्रौत, स्मार्त आदि हैं। धर्म, कर्म काण्ड, यज्ञ, योग आदि कर्मों को श्रौत कर्म कहा गया है, बाकि अन्य जीवन के लिए आवश्यक कर्म स्मार्त कर्म की श्रेणी में रखें गए हैं। यदि कर्म स्वार्थवश किए गए हैं तब तद्नुसार सुख अथवा दुःख की प्राप्ति होती है और यदि निस्वार्थ भाव से किए गए हैं तब परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग प्रशस्त होते हैं, यह परम सत्य है।

ज्ञान शब्द 'क्षा' धातु से बना है इसका अर्थ है जमना। परमपिता तत्व को जान लेना ही वस्तुतः ज्ञान है। देखा जाए तो ज्ञान की प्राप्ति सरल नहीं है क्योंकि इसके लिए संस्कार और सत्संग परम आवश्यक हैं। यह उपलब्धि एक, दो नहीं वरन अनन्तानन्त जन्म-जन्मान्तरों में भटकने के बाद सम्भव हो पाती हैं। इसीलिए परमात्मा की प्राप्ति का यह मार्ग अत्यन्त ही दुर्गम और क्लिष्ट है।

मनीषियों ने परमात्मा प्राप्ति का तीसरा मार्ग भक्ति सर्वाधिक सरल और सुगम बताया है। भक्ति में तीन शब्दों का भेद छिपा है - सेवा सम्बन्धी, आत्मसम्बन्धी और ब्रह्म सम्बधी। भक्ति के प्रधानतः नौ भेद बताए गए हैं। नवद्या भक्ति से जीव का जीवन सफल हो जाता है। काम, क्रोध, तथा लोभादि से अलग जो जीव परमात्मा में इस नवधाभक्ति में आस्था और श्रद्धा से लीन हो जाता हैं उसको अन्ततः परम पद अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति होती ही होती है। भक्ति के नौ भेद हैं -

1. श्रवण अर्थात् परमात्मा की लीला, कथा, शक्ति रूप, वर्णन आदि श्रद्धा भाव से सुनना।
2. कीर्तन अर्थात् परमात्मा के नाम, गुण, चरित्र, पराक्रम आदि का कीर्तन करना।
3. स्मरण अर्थात् परमात्मा का प्रत्येक स्थिति, समय, स्थान आदि में ध्यान करना। उनके ध्यान में ही रमें रहना।
4. पाद सेवा अर्थात् परमात्मा के श्री चरणों का आश्रय और उनकी सेवा में भाव-विभोर होकर सदैव लीन रहना।
5. अर्चना अर्थात् मन, कर्म और वचन से ईश्वर का पूजन करना।

6. वन्दन अर्थात् परमात्मा की साकार अथवा निराकार रूप में सेवा और वन्दना करना।

7. दास्य अर्थात् परमात्मा के प्रति सदैव ऐसे भाव बनाकर उनके अस्तित्व को स्वीकारना जैसे कि वह स्वामी और हम उनके तुच्छ और निरीह दास हैं।

8. सख्य अर्थात् सच्चे मन से परमात्मा को अपना सखा मानकर अपने समस्त पाप और पुण्य का उनसे सांझा करना।

9. आत्म निवेदन अर्थात् प्रभु की सत् सत्ता में अपने को तन, मन और धन से समर्पित कर देना। सदा यह भाव रखना कि सब कुछ प्रभु के ही हाथ है। बस अपना कर्म किया और प्रभु ऊपर अपने है।